मनुस्मृति में प्रक्षेप

डॉ. सुरेन्द्रकुमार

राजर्षि मनु और उनकी मनुस्मृति

[मनुस्मृति-विषयक विभिन्न बिन्दुओं की
विभिन्न विद्वानों द्वारा तर्क-प्रमाणयुक्त समीक्षा]

लेखक एवं संकलन-सम्पादक

डॉ० सुरेन्द्रकुमार

आचार्य, एम.ए. संस्कृत-हिन्दी

(मनुस्मृति भाष्यकार एवं समीक्षक)

प्राचार्य, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गुड़गांव (हरियाणा)

© **सर्वाधिकार सुरक्षित**

ISBN 978-81-7077-125-0

प्रकाशक : विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द
4408, नई सड़क, दिल्ली–110 006
दूरभाष : 23977216, 65360255
e-mail : ajayarya@vsnl.com
Website : www.vedicbooks.com

वैदिक–ज्ञान–प्रकाश का गरिमापूर्ण 84वाँ वर्ष (1925–2009)

संस्करण : 2009

मूल्य : 150.00 रुपये

मुद्रक : नवशक्ति प्रिंटर्स, दिल्ली–110 032

RAJRISHI MANU AUR UNKI MANUSMRITI *by* Dr. Surendra Kumar

सम्पादकीय

'राजर्षि मनु और उनकी मनुस्मृति' शीर्षक यह मुक्ताहार पाठकों के हाथों में सौंपते हुए मुझे पर्याप्त प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। इसके तीन कारण हैं—एक, इस विषय के विशेषज्ञ अनेक वैदिक विद्वानों के लेख इसमें ऐसे संकलित हैं जैसे किसी हार में मोतियाँ पिरोई होती हैं। उन विद्वानों के मनु और मनुस्मृति-सम्बन्धी चिन्तन से पाठक लाभान्वित हो सकेंगे। दूसरा, यह पुस्तक मनु और मनुस्मृति-विषयक भ्रान्तियों को दूर करने में सहायक सिद्ध होगी तथा उन भ्रान्तियों के विस्तार को रोकेगी। तीसरा, एक ही स्थान पर, एक विषय पर, अनेक विचारकों के विचार एकत्र मिलना कठिन होता है। सबको सब पुस्तकें उपलब्ध नहीं हो पातीं, अतः अध्ययन-मनन में पाठकों को सुविधा-लाभ होगा।

सन् 1996 (विक्रमी सम्वत् 2053) और उसके कुछ पूर्व वर्षों में कुछ राजनीतिक दलों ने मनु-मनुस्मृति को अपनी स्वार्थपूर्ति का मुद्दा बनाकर 'मनुवाद' के नाम पर खूब विषवमन किया और भारतीय समाज में विघटन के बीज बोने शुरू कर दिये। आर्यसमाज जैसा राष्ट्रभक्त संगठन इस राष्ट्रविरोधी गतिविधि से चिन्तित हो उठा। राष्ट्रहितैषी बुद्धिजीवियों के मस्तक पर चिन्ता की रेखाएं झलकने लगीं। सब सोचते थे कि इसका निराकरण कैसे किया जाये। दुःख का विषय यह भी था कि यह सारा प्रोपगेंडा मिथ्या था और पाश्चात्य लेखकों द्वारा प्रयुक्त फूट-नीति पर टिका था। ऐसा लग रहा था—जैसे अंग्रेजों का स्वप्न स्वतन्त्र भारत में साकार होने लगा है।

किसी को भी आगे न आता देख इस समाज और राष्ट्रविरोधी निन्दनीय गतिविधि को रोकने के लिए आर्यसमाज उठ खड़ा हुआ। अपने तर्क रूपी तीर और प्रमाण रूपी तरकस लेकर, दृढ़संकल्प के कमरबन्द से

कमर कसकर, वैचारिक युद्ध के लिए सन्नद्ध हो गया। वयोवृद्ध संन्यासी स्वामी दीक्षानन्द जी सरस्वती ने सन् 1996 (विक्रमी संवत् 2053) को 'मनुवर्ष' घोषित कर दिया और मनुविरोधी वितण्डावाद को रोकने तथा मनु-सम्बन्धी सत्य मान्यताओं को प्रचारित-प्रसारित करने का कार्यक्रम बनाया। देश के कोने-कोने में आर्यसमाजों के माध्यम से मनु-विषयक उत्सवों के आयोजन हुए, अनेक स्थानों पर महासम्मेलन भी हुए, लेखों और ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ। यह सब देखकर मनुविरोधी ठिठकने लगे। आर्यों के तर्कों और प्रमाणों के उत्तर न सूझने पर वे लोग बगलें झाँकते रह गये। मनुविरोधी अभियान में एक ठहराव-सा आ गया और भ्रान्तियों का प्रसार धीमा पड़ गया।

उसी वर्ष में स्वामी दीक्षानन्द जी सरस्वती ने 'राजर्षि मनु' के नाम से आठ ट्रैक्ट प्रकाशित किये। एक ट्रैक्ट एक विद्वान के लेख पर आधारित था। लेखक सभी सुलझे हुए विद्वान् थे। विषय को प्रभावशाली शैली में प्रस्तुत करने की योग्यता उनकी लेखनी में थी। जिस लेखक का जैसा अपना विचार था उसको बिना किसी टीका-टिप्पणी के उसी रूप में प्रकाशित कर दिया। लक्ष्य यही था कि लोगों तक मनु-सम्बन्धी अच्छे विचार एक बार पहुँचें।

उसी वर्ष आर्यसमाज भुवनेश्वर (उड़ीसा) के उत्सव पर उड़िया के आर्य लेखक श्री प्रियव्रत दास जी इन्जीनियर के निमन्त्रण पर स्वामी जी का और मेरा जाना हुआ। हम दोनों एक ही कक्ष में तीन दिन रुके। 'राजर्षि मनु' नामक पुस्तिकाओं के सैद्धान्तिक पक्ष पर पर्याप्त चर्चा हुई। स्वामीजी ने मुझे टिप्पणी-सहित एक पुस्तकाकार में इनका सम्पादन करने को कहा। फिर वह बात विस्मृति के अन्धकार में विलीन हो गयी। कुछ वर्षों के बाद स्वामी जी महाराज भी दिवंगत हो गये।

विचित्र संयोग देखिए। आर्य साहित्य के प्रकाशक, प्रचारक और वितरक 'गोविन्दराम हासानन्द, नयी सड़क, दिल्ली' के मन में वही योजना वर्षों बाद फिर से अंकुरित हुई और उसके सम्पादन का दायित्व फिर से मुझ पर आ गया। तब तो यह पूरा नहीं हो सका किन्तु अब इसको पूरा कर अपने पाँच लेखों के साथ इसे पाठकों के हाथों में सौंप रहा हूँ। पाठक

इसका अध्ययन कर अधिकाधिक लोगों को पढ़ने को प्रेरित करें जिससे भारत के ही नहीं, अपितु मानव जाति के गौरव रूप महापुरुष, आदिराजा, विश्व के आदि संविधान निर्माता, आदि धर्मशास्त्रकार और मानवों के आदि–प्रमुख–पुरुष महर्षि मनु के विषय में फैलाई जा रही भ्रान्तियों पर विराम लग सके और मनु की प्रतिष्ठा की रक्षा हो सके।

इस राष्ट्रहितकारी पुण्य कार्य का प्रकाशन–दायित्व अपने हाथों में लेने के लिए 'गोविन्दराम हासानन्द' प्रकाशन के स्वामी श्री अजयकुमार जी शतशः धन्यवाद के पात्र हैं।

गुड़गांव **—डॉ० सुरेन्द्रकुमार**

अनुक्रम

1. आदिराजा और आदि विधि-प्रदाता मनु स्वायम्भुव 11
(जीवनवृत्त, व्यक्तित्व और कृतित्व) *(डॉ. सुरेन्द्रकुमार)*
2. मनुस्मृति की मौलिक मान्यताएँ *(डॉ. सुरेन्द्रकुमार)* 35
3. मनुस्मृति में प्रक्षेप : प्रमाण और दुष्परिणाम *(डॉ. सुरेन्द्रकुमार)* 54
4. मनुस्मृति : एक अध्ययन *(स्व. पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय)* 67
5. मनुस्मृति : रचनाकाल और प्रक्षेप *(स्व. आचार्य रामदेव)* 108
6. मनु की देन *(स्व. पं. भगवद्दत्त)* 138
7. राजर्षि मनु और मनुस्मृति *(स्व. डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल)* 154
8. राजर्षि मनु और वेद *(डॉ. भवानीलाल भारतीय)* 169
9. मनु की वेदों के प्रति आस्था *(डॉ. कृष्णलाल)* 186
10. मनु की दृष्टि में ब्राह्मण और शूद्र *(डॉ. कृष्णवल्लभ पालीवाल)* 210
11. चिन्तन की एक भिन्न दिशा : मनु की वर्ण-व्यवस्था में
शूद्र तथा अन्य वर्ण *(डॉ. उर्मिला रुस्तगी)* 238
12. वर्णव्यवस्था में आर्य-शूद्र वैमनस्य की अवधारणा
पाश्चात्य दुरभिसन्धि की देन *(डॉ. सुरेन्द्र कुमार)* 268
13. किस मनु का विरोध किया है डॉ० अम्बेडकर ने?
(डॉ. सुरेन्द्र कुमार) 276

3

मनुस्मृति में प्रक्षेप : प्रमाण और दुष्परिणाम

डॉ० सुरेन्द्रकुमार
(मनुस्मृति भाष्यकार एवं समीक्षक)

'प्रक्षेप', 'क्षेपक' अथवा 'प्रक्षिप्त' शब्द का अर्थ है—मिलावट। किसी के ग्रन्थ में किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा उसकी सहमति-स्वीकृति के बिना मिलाये गये विचारों को 'प्रक्षेप' कहा जाता है। यह आवश्यक नहीं कि 'प्रक्षेप' विरोधी विचारयुक्त ही हो, वह समर्थक विचारमुक्त भी हो सकता है। कुछ लोगों का कहना है कि मनुस्मृति में प्रक्षेप नहीं हैं, ऐसे लोग या तो पूर्वाग्रही होकर अथवा गम्भीर अध्ययन से रहित होने के कारण यह बात कहते हैं, क्योंकि मनुस्मृति में परस्परविरोधी, प्रसंगविरोधी विचारों की भरमार है। ये दोष किसी एक व्यक्ति और वे भी किसी ऋषि-स्तर के व्यक्ति के लेखन में नहीं हो सकते। इनके अतिरिक्त अन्य अनेक प्रमाण भी हैं जो प्रक्षेपों के अस्तित्व को सिद्ध करते हैं।

प्राचीन भारतीय साहित्य में प्रक्षेप की प्रवृत्ति का इतिहास

प्राचीन भारतीय साहित्य की यह एक प्रमाणित ऐतिहासिक सच्चाई है कि उसमें समय-समय पर प्रक्षेप होते रहे हैं। इस विषयक पाण्डुलिपीय और लिखित प्रमाण भी उपलब्ध हैं तथा अन्त:साक्ष्य भी। अत: अब यह विषय विवाद का नहीं रह गया है। मनुस्मृति के प्रक्षेपों पर विचार करने से पूर्व अन्य प्राचीन भारतीय साहित्य के प्रक्षेप-विषयक इतिहास पर एक दृष्टिपात किया जाता है जिससे पाठकों को प्रक्षिप्तता की सत्यता की अनवरत प्रवृत्ति का ज्ञान हो सके। ठीक ऐसी ही स्थिति मनुस्मृति की रही है।

(अ) वाल्मीकीय रामायण—पाठभेद से वाल्मीकीय रामायण के

आज तीन संस्करण मिलते हैं—1. दाक्षिणात्य, 2. पाश्चमोत्तरीय, 3. गौडीय या पूर्वीय। इन तीनों संस्करणों में अनेक सर्गों और श्लोकों का अन्तर है। गीताप्रेस, गोरखपुर से प्रकाशित दाक्षिणात्य संस्करण में अभी भी अनेक ऐसे सर्ग समाविष्ट हैं, जो मूलपाठ के साथ घुल-मिल नहीं पाये, अतः अभी तक उन पर 'प्रक्षिप्तः सर्गः' लिखा मिलता है (द्रष्टव्य एक उदाहरण—उत्तरकाण्ड के 59 सर्ग के पश्चात् दो सर्ग)।

नेपाल की राजधानी काठमाण्डू स्थित राष्ट्रीय अभिलेखागार में नेवारी लिपि में वाल्मीकीय रामायण की एक पाण्डुलिपि सुरक्षित है जो लगभग एक हजार वर्ष पुरानी है। उसमें वर्तमान संस्करणों से सैकड़ों श्लोक कम हैं। स्पष्टतः वे इधर के एक हजार वर्षों की अवधि में मिलाये गये हैं। समीक्षकों का मत है कि वर्तमान रामायण में प्राप्त बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड के अधिकांश भाग प्रक्षिप्त हैं। आज भी रामायण के आरम्भ में तीन अनुक्रमणिकाएँ प्राप्त हैं, जो समयानुसार परिवर्धित प्रसंगों की पोषक हैं। उनमें से एक में तो स्पष्टतः 'षट्काण्डानि' कहा है (4/2)। अवतार विषयक श्लोक अवतार की धारणा पनपने के उपरान्त प्रक्षिप्त हुए।

एक बौद्ध ग्रन्थ का प्रमाण प्रमुख रूप से उल्लेखनीय है। बौद्ध साहित्य में एक 'अभिधर्म महाविभाषा' ग्रन्थ मिलता था। इसका तीसरी शताब्दी का चीनी अनुवाद उपलब्ध है। उसमें एक स्थान पर उल्लेख है कि 'रामायण में बारह हजार श्लोक हैं' (डॉ० फादर कामिल बुल्के, 'रामकथा : उत्पत्ति और विकास', पृ० 94)। जबकि आज उसमें पच्चीस हजार श्लोक पाये जाते हैं। यह एक संक्षिप्त विवरण है यह दर्शाने के लिए कि प्राचीन ग्रन्थों में किस प्रकार प्रक्षेप होते रहे हैं।

(आ) महाभारत—महाभारत के सन्दर्भ में एक महत्वपूर्ण प्रमाण उद्धृत करने जा रहा हूँ। यह इस तथ्य की जानकारी दे रहा है कि लगभग दो हजार वर्ष पूर्व महाभारत में होने वाले प्रक्षेपों के विरुद्ध तत्कालीन साहित्य में आवाज उठी थी। यह प्रमाण इस बात का भी ज्वलन्त प्राचीन साक्ष्य है कि प्राचीन भारतीय साहित्य में प्रक्षेप बहुत पहले से होते आ रहे हैं। '**गरुड़ पुराण**' (तीसरी शती) का निम्नलिखित श्लोक अमूल्य प्रमाण है जो यह बताता है कि दूसरी संस्कृति के जो लोग वैदिक संस्कृति में

सम्मिलित हुए थे उन्होंने अपने स्वार्थ-साधन के लिए भारतीय ग्रन्थों में प्रक्षेप किये हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि इस बात को एक पुराण कह रहा है जिनमें स्वयं प्रक्षेपों की भरमार है या जो महर्षि व्यास के नाम पर स्वयं प्रक्षेप के प्रतिरूप हैं—

दैत्याः सर्वे विप्रकुलेषु भूत्वा,
कलौ युगे भारते षट् सहस्त्र्याम्।
निष्कास्य कांश्चित् नवनिर्मितानां
निवेशनं तत्र कुर्वन्ति नित्यम्॥ *(ब्रह्मकाण्ड 1/59)*

अर्थात्—'इस कलियुग में महाभारत में परिवर्तन-परिवर्धन किया जा रहा है। दैत्यवंशी लोग स्वयं को ब्राह्मण कुल का बताकर कुछ श्लोकों को निकाल रहे हैं और उनके स्थान पर नये-नये श्लोक स्वयं रचकर डाल रहे हैं।'

इसी प्रकार की एक जानकारी '**महाभारत**' में भी दी गयी है कि स्वार्थी लोगों ने वैदिक परम्पराओं को विकृत कर दिया है और उसके लिए उन्होंने ग्रन्थों से छेड़छाड़ की है। महाभारतकार की पीड़ा देखिए—

सुरा मत्स्याः पशोर्मांसम्, आसवं कृशरौदनम्।
धूर्तैः प्रवर्तितं यज्ञे नैतद् वेदेषु विद्यते॥
अव्यवस्थित मर्यादैः विमूढैर्नास्तिकैः नरैः।
संशयात्ममिरव्यक्तैः हिंसा समनुवर्णिता॥

(शान्तिपर्व 265/9, 4)

अर्थात्—मदिरासेवन, मत्स्यभोजन, पशुमांस, आसव, लवणान्न की आहुति, इनका विधान वेदों में (वैदिक संस्कृति में) नहीं है। यह सब धूर्त लोगों ने प्रचलित किया है। मर्यादाहीन, मद्य-मांसादि लोलुप, नास्तिक, आत्मा-परमात्मा के प्रति संशयग्रस्त लोगों ने गुपचुप तरीके से वैदिक ग्रन्थों में हिंसा-सम्बन्धी वर्णन मिला दिये हैं।

महाभारत महाकाव्य की कलेवर वृद्धि का इतिहास वर्तमान महाभारत में स्वयं वर्णित किया गया है। महाभारत युद्ध के बाद महर्षि व्यास ने जो काव्य लिखा उसका नाम 'जय काव्य' था—**जयो नामैतिहासोऽयम्।** (महा० आदि० 1/2, 62/20) और उसमें छह या आठ हजार श्लोक थे—

अष्टौ श्लोकसहस्त्राणि अष्टौ श्लोकशतानि च। (आदिपर्व० 2/131, 269)। व्यासशिष्य वैशम्पायन ने इसको बढ़ाकर 24,000 श्लोक का काव्य बना दिया और इसका नाम 'भारत संहिता' दिया—**चतुर्विंशती साहस्त्रीं चक्रै भारत संहिताम्।** (आदिपर्व 1/102)। सौति ने इसमें परिवर्धन करके इसे एक लाख श्लोकों का बना दिया और इसका नाम 'महाभारत' रखा—**शत साहस्त्रमिदं काव्यं मयोक्तं श्रूयतां हि वः**। (आदि० 1/108)। यह 'जय' काव्य से 'महाभारत' बनाने की यथार्थ कथा है। लोग अपना पृथक् स्वतन्त्र काव्य बनाने की बजाय उसी में वृद्धि करते गये। इससे महाभारत की प्रामाणिकता का ह्रास हुआ है और ऐतिहासिकता विनष्ट हो गयी है।

गीता—गीता महाभारत का ही अंश है। उसकी वर्तमान विशालता व्यावहारिक नहीं है। युद्धभूमि में कुछ मिनटों के लिए दिया गया उपदेश न तो इतना विशाल हो सकता है और न अवसर के अनुकूल। यदि उसको संक्षेप का विस्तार कहा जाये तो वह कृष्ण प्रोक्त मौलिक प्रवचन नहीं रह जायेगा। प्रत्येक दृष्टि से वह परिवर्धित रूप है। वह व्यासकृत भी नहीं है बाद का परिवर्धन है।

निरुक्त—आचार्य यास्ककृत निरुक्त के 13–14 अध्यायों के विषय में समीक्षकों का यह मत है कि वे अभाव की पूर्ति के लिए बाद में जोड़े गये हैं। उन सहित निरुक्त 'परिवर्धित संस्करण' है जो शिष्य–परम्परा द्वारा रचित है।

चरकसंहिता—महर्षि अग्निवेश प्रणीत चरकसंहिता में भी उनके शिष्यों ने अन्तिम अध्यायों का कुछ भाग अभाव की पूर्ति की दृष्टि से संयुक्त किया है। किन्तु वहाँ अच्छी बात यह है कि यह स्पष्ट उल्लेख कर दिया है कि यह भाग अमुक व्यक्ति द्वारा रचित है। फिर भी इससे परिवर्धन की प्रवृत्ति–परम्परा और इतिहास की जानकारी मिलती है।

मनुस्मृति—इसी प्रकार मनुस्मृति में भी समय–समय पर प्रक्षेप हुए प्रक्षेपो के प्रमाण हैं। अपितु, मनुस्मृति में अधिक प्रक्षेप हुए हैं क्योंकि उसका सम्बन्ध हमारी दैनंदिन जीवनचर्या से था और वह जीवन व समाज का विधिग्रन्थ था। उससे जीवन व समाज सीधा प्रभावित होता था अतः उसमें परिवर्तन भी वांछनीय बन जाता था। जैसे, भारत के संविधान में

छियासी के लगभग संशोधन आज तक की आधी शती में हो चुके हैं। इसी प्रकार मनुस्मृति में निम्नलिखित प्रमुख कारणों के आधार पर परिवर्तन-परिवर्धन किये जाते रहे—

1. अभाव की पूर्ति के लिए, 2. स्वार्थ की पूर्ति के लिए, 3. गौरववृद्धि के लिए, 4. विकृति उत्पन्न करने के लिए।

ये प्रक्षेप (परिवर्तन या परिवर्धन) अधिकांश में स्पष्ट दीख जाते हैं। महर्षि मनु सदृश धर्मज्ञ और विधि प्रदाता की रचना में रचनादोष नहीं हो सकते, किन्तु प्रक्षिप्तों के कारण दोष आ गये हैं। वे प्रक्षिप्त कहीं विषयविरुद्ध, कहीं प्रसंगविरुद्ध, कहीं परस्परविरुद्ध, कहीं शैलीविरुद्ध रूप में दीख जाते हैं। आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, खारी बावली, दिल्ली-6 से प्रकाशित मेरे शोध और भाष्ययुक्त संस्करण में मैंने उनकी पहचान निम्नलिखित सात साहित्यिक मानदण्डों के आधार पर की है। वे हैं—

1. विषयविरोध, 2. प्रसंगविरोध, 3. परस्परविरोध, 4. अवान्तरविरोध, 5. पुनरुक्ति, 6. शैलीविरोध, 7. वेदविरोध।

प्रक्षिप्तानुसन्धान के इन तटस्थ साहित्यिक मानदण्डों के आधार पर मनुस्मृति के उपलब्ध 2685 श्लोकों में से 1471 प्रक्षिप्त सिद्ध हुए हैं और 1214 मौलिक। विस्तृत समीक्षा के लिए मनुस्मृति का उक्त संस्करण पठनीय है। उसमें प्रत्येक प्रक्षिप्त सिद्ध श्लोक पर उसकी समीक्षा में प्रक्षेप का कारण मानदण्ड रूप में दर्शाया गया है। उस मानदण्ड को कोई पाठक स्वयं लागू करके देख सकता है।

मनुस्मृति में प्रक्षेप होने की पुष्टि अधोवर्णित लिखित प्रमाण भी करते हैं। और प्राय: सभी वर्गों के विद्वानों के मत भी करते हैं। पुरातात्विक प्रमाण भी उपलब्ध हैं—

(क) मनुस्मृति— भाष्यकार मेधातिथि (9वीं शताब्दी) की तुलना में कुल्लूक भट्ट (12वीं शताब्दी) के संस्करण में एक सौ सत्तर श्लोक अधिक उपलब्ध हैं। वे तब तक मूल पाठ के साथ घुल-मिल नहीं पाये थे, अत: उनको कुल्लूक भट्ट के संस्करण में बृहत् कोष्ठक में दर्शाया गया है। अन्य प्राचीन टीकाओं में भी सभी में कुछ-कुछ श्लोकों और पाठों का अन्तर है।

(ख) मेधातिथि के भाष्य के अन्त में एक श्लोक मिलता है, जिससे

यह जानकारी मिलती है कि मनुस्मृति और उसका मेधातिथि भाष्य लुप्तप्रायः था। उसको विभिन्न संस्करणों की सहायता से सहारण राजा के पुत्र राजा मदन ने पुनः संकलित कराया। ऐसी स्थिति में श्लोक में क्रमविरोध, स्वल्पाधिक्य हो जाना सामान्य बात है—

मान्या कापि मनुस्मृतिस्तदुचिता व्याख्यापि मेधातिथेः।
सा लुप्तैव विधेर्वशात् क्वचिदपि प्राप्यं न तत्पुस्तकम्।
क्षोणीन्द्रो मदनः सहारणसुतो देशान्तरादाहृतैः,
जीर्णोद्धारमचीकरत्तत इतस्तत्पुस्तकैः लेखितैः॥

(उपोद्घात, मेधातिथि भाष्य, गंगानाथ झा, खण्ड 3, पृ० 1)

अर्थात्—'समाज में मान्य कोई मनुस्मृति थी, उस पर मेधातिथि का भाष्य भी था किन्तु वह दुर्भाग्य से लुप्त हो गयी। वह कहीं उपलब्ध नहीं थी। सहारण के पुत्र राजा मदन ने विभिन्न प्रदेशों से उसके संस्करण मँगाकर उसका जीर्णोद्धार कराया और विभिन्न पुस्तकों से मिलाकर यह भाष्य तैयार कराया।'

मनुस्मृति के स्वरूप में परिवर्तन का यह बहुत महत्वपूर्ण प्रमाण है। आर्यसमाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द ने अपने ग्रन्थों में गत शती में सर्वप्रथम यह सुस्पष्ट घोषणा की थी कि मनुस्मृति में अनेक प्रक्षेप किये गये हैं, ऐसे जैसे कि ग्वाले दूध में पानी की मिलावट करते हैं। उन्होंने कुछ प्रक्षिप्त श्लोकों का कारणपूर्वक दिग्दर्शन भी कराया है। उन्होंने घोषणा की थी कि मैं प्रक्षेपरहित मनुस्मृति को ही प्रमाण मानता हूं (ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, ग्रन्थ प्रामाण्य विषय)।

(घ) सम्पूर्ण भारतीय प्राचीन साहित्य में प्रक्षिप्तों के होने के यथार्थ को सुप्रसिद्ध सनातनी आचार्य स्वामी आनन्दतीर्थ 'महाभारत तात्पर्यार्थ निर्णय' में स्पष्ट रूप से स्वीकार करते हैं—

क्वचिद् ग्रन्थान् प्रक्षिपन्ति क्वचिदन्तरितानपि,
कुर्युः क्वचिच्च व्यत्यांसं प्रमादात् क्वचिदन्यथा।
अनुत्सन्नाः अपि ग्रन्थाः व्याकुलाः सन्ति सर्वशः,
उत्सन्नः प्रायशः सर्वे, कोट्यंशोऽपि न वर्तते॥ *(अ० 2)*

अर्थ—कहीं ग्रन्थों में प्रक्षेप किया जा रहा है, कहीं मूल वचनों को

बदला जा रहा है, कहीं आगे-पीछे किया जा रहा है, कहीं प्रमादवश अशुद्ध लेखन हो रहा है जो ग्रन्थ नष्ट होने से बच गये हैं वे काट-छाँट की इन पीड़ाओं से व्याकुल हैं (क्षत-विक्षत हैं)। अधिकांश ग्रन्थों को नष्ट किया जा चुका है। अब तो साहित्य का करोड़वां भाग भी नहीं बचा है।' यही स्थिति मनुस्मृति की हुई है।

चीन में प्राप्त पुरातात्विक प्रमाण—विदेशी प्रमाणों में मनुस्मृति के काल तथा श्लोक संख्या सम्बन्धी जानकारी उपलब्ध करानेवाला एक महत्वपूर्ण पुरातात्विक प्रमाण हमें चीनी भाषा के हस्तलेखों में मिलता है। सन् 1932 में जापान ने बम विस्फोट द्वारा जब चीन की ऐतिहासिक दीवार को तोड़ा तो उसमें लोहे का एक ट्रंक मिला जिसमें चीनी पुस्तकों की प्राचीन पाण्डुलिपियाँ भरी थीं। वे हस्तलेख सर ऑगुत्स फ्रित्स जॉर्ज को मिल गये। वह उन्हें लंदन ले आया और उनको ब्रिटिश म्यूजियम में रख दिया।

उन हस्तलेखों को प्रो. एन्थनी ग्रेमे (Prof. Anthony Graeme) ने चीनी भाषा के विद्वानों से पढ़वाया। उनसे यह जानकारी मिली कि चीन के राजा चिन-इज-वांग (Chin-Ize-Wang) ने अपने शासनकाल में यह आज्ञा दे दी थी कि सभी प्राचीन पुस्तकों को नष्ट कर दिया जाये जिससे चीनी सभ्यता के सभी प्राचीन प्रमाण नष्ट हो जायें। तब उनको किसी विद्याप्रेमी ने ट्रंक में छिपा लिया और दीवार बनते समय उस ट्रंक को दीवार में चिनवा दिया। संयोग से वह ट्रंक बम विस्फोट में निकल आया। चीनी भाषा में लिखे गये उन हस्तलेखों में एक में यह लिखा है—'**मनु का धर्मशास्त्र भारत में सर्वाधिक मान्य है जो वैदिक संस्कृत में लिखा है और दस हजार वर्ष से अधिक पुराना है।**' यह विवरण केवल मोटवानी की पुस्तक 'मनु धर्मशास्त्र : ए सोशियोलॉजिकल एण्ड हिस्टोरिकल स्टडी' (पृ० 232-233) में दिया है।

यह चीनी प्रमाण मनुस्मृति के वास्तविक काल विवरण को तो प्रस्तुत नहीं करता किन्तु यह संकेत देता है कि मनु का धर्मशास्त्र प्राचीन है। पाश्चात्य लेखकों द्वारा कल्पित काल निर्णय को यह प्रमाण झुठला रहा है और यह जानकारी दे रहा है कि कभी मनुस्मृति में 680 श्लोक थे।

(च) पाश्चात्य शोधकर्ता वूलर, जे. जौली, कीथ, मैकडानल आदि ने

मनुस्मृति सहित प्राचीन भारतीय साहित्य में प्रक्षेपों का होना सिद्धान्ततः स्वीकार किया है। जे. जौली ने कुछ प्रक्षेप दर्शाये भी हैं।

(छ) मनुस्मृति के कुछ अन्य भाष्यकारों एवं समीक्षकों ने प्रक्षेपों की संख्या इस प्रकार मानी है—

विश्वनाथ नारायण माण्डलीक	148
हरगोविन्द शास्त्री	153
जगन्नाथ रघुनाथ धारपुरे	100
जयन्तकृष्ण हरिकृष्णदेव	59

मनुस्मृति के प्रथम पाश्चात्य समीक्षक न्यायाधीश सर विलियम जोन्स उपलब्ध 2685 श्लोकों में से 2005 श्लोकों को प्रक्षिप्त घोषित करते हैं। उनके मतानुसार 680 श्लोक ही मूल मनुस्मृति में थे।

महात्मा गांधी ने अपनी 'वर्णव्यवस्था' नामक पुस्तक में स्वीकार किया है कि वर्तमान मनुस्मृति में पाई जाने वाली आपत्तिजनक बातें बाद में की गयी मिलावटें हैं।

(ञ) भारत के पूर्व राष्ट्रपति और दार्शनिक विद्वान् डॉ० राधाकृणन, श्री रवींद्रनाथ टैगोर आदि भी मनुस्मृति में प्रक्षेपों का अस्तित्व स्वीकार करते हैं।

डॉ० भीमराव अम्बेडकर और मनुस्मृति के प्रक्षेप : डॉ० अम्बेडकर ने अपने ग्रन्थों में मनुस्मृति के श्लोकार्थ प्रमाण रूप में उद्धृत किये हैं उनमें बहुत सारे परस्परविरोधी विधान वाले हैं। आश्चर्य है कि फिर भी उन्होंने मनुस्मृति में परस्परविरोध नहीं माना। यदि वे मनुस्मृति में परस्पर विरोध मान लेते तो उन्हें दो में से किसी एक श्लोक को प्रक्षिप्त मानना पड़ता। फिर उन्हें मनुस्मृति में प्रक्षेपों का अस्तित्व स्वीकार करना पड़ता। प्रक्षेपों के अस्तित्व से मनुस्मृति की विशुद्ध प्राचीन मान्यताएँ स्पष्ट हो जातीं। तब उनके द्वारा न उग्र विरोध का अवसर आता और न विरोध का बवंडर उठता। किन्तु डॉ० अम्बेडकर ने जानबूझकर प्रक्षेपों के अस्तित्व की चर्चा भी नहीं की। प्रश्न उठता है कि क्या उन्हें प्रक्षेपों की पहचान नहीं हो पाई?

यह विश्वसनीय नहीं है कि उन्हें परस्परविरोधी प्रक्षेपों का भान न हुआ हो, क्योंकि उन्होंने तो वेद से लेकर पुराणों तक प्रायः सभी ग्रन्थों में

प्रक्षेप के अस्तित्व को स्वीकार किया है और उन पर स्पष्ट चर्चा की है। देखिए—

(क) वेदों में प्रक्षेप कहना : ''पुरुष सूक्त के विश्लेषण से क्या निष्कर्ष निकलता है? पुरुष सूक्त ऋग्वेद में एक क्षेपक है।'' (अम्बेडकर वाङ्मय, खण्ड 13, पृ० 112)

''ऐसा प्रतीत होता हे कि वे दो मन्त्र (पुरुष सूक्त के 11 और 12) बाद में सूक्त के बीच जोड़ दिये गये। अतएव केवल पुरुष सूक्त ही बाद में नहीं जोड़ा गया, उसमें समय-समय पर और मन्त्र भी जुड़ते रहे। कुछ विद्वानों का तो यह भी मत है कि पुरुषसूक्त तो क्षेपक हैं ही, उसके कुछ मन्त्र और भी बाद में इसमें जोड़े गये।'' (वही, खण्ड 13, पृ० 111)

वेदों में प्रक्षेप मानने की अवधारणा इस कारण गलत है क्योंकि बहुत प्राचीन काल से वेदव्याख्या ग्रन्थों में वेदों के एक-एक सूक्त, अनुवाक, पद और अक्षर की गणना की हुई है, जो लिपिबद्ध है। कुछ भी छेड़छाड़ होते ही उससे पता चल जायेगा। इसी प्रकार अनेक पदपाठ आदि की पद्धति आविष्कृत है जिनसे वेदमन्त्रों का स्वरूप सुरक्षित बना हुआ है।

(ख) वाल्मीकि रामायण में क्षेपक—''महाभारत की तरह रामायण की कथावस्तु में भी कालान्तर में क्षेपक जुड़ते गये।'' (अम्बेडकर वाङ्मय, खण्ड 7, पृ० 120 तथा 130)

(ग) महाभारत में क्षेपक—''व्यास के 'जय' नामक लघु काव्य ग्रन्थ में 8,800 से अधिक श्लोक नहीं थे। वैशम्पायन के 'भारत' में यह संख्या बढ़कर 24,000 हो गयी। सौति ने श्लोकों की संख्या में विस्तार किया और इस तरह महाभारत में श्लोकों की संख्या बढ़कर 96,836 हो गयी।'' (वही, खण्ड 7, पृ० 127)

(घ) गीता में क्षेपक—''मूल भगवद्गीता में प्रथम क्षेपक उसी अंश का एक भाग है जिसमें कृष्ण को ईश्वर कहा गया है।....दूसरा क्षेपक वह भाग है जहाँ उस पूर्व मीमांसा के सिद्धान्तों की पुष्टि के रूप में सांख्य और वेदान्त दर्शन का वर्णन है, जो उनमें पहले नहीं था।....तीसरे क्षेपक में वे श्लोक आते हैं, जिनमें कृष्ण को ईश्वर के स्तर से परमेश्वर के स्तर पर पहुँचा दिया गया है।'' (वही, खण्ड 7, पृ० 275)

(ङ) पुराणों में क्षेपक : ''ब्राह्मणों ने परम्परा से प्राप्त पुराणों में अनेक नये अध्याय जोड़ दिये, पुराने अध्यायों को बदलकर नये अध्याय लिख दिये और पुराने नामों से ही अध्याय रच दिये। इस तरह इस प्रक्रिया से कुछ पुराणों की पहले वाली सामग्री ज्यों की त्यों रही, कुछ की पहले वाली सामग्री लुप्त हो गयी, कुछ में नयी सामग्री जुड़ गयी तो कुछ नयी रचनाओं में ही परिवर्तित हो गये।'' (वही, खण्ड 7, पृ० 133)

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि डॉ० अम्बेडकर प्राचीन भारतीय साहित्य में प्रक्षेपों की स्थिति को समझते थे। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने जानबूझ कर मनुस्मृति मे प्रक्षेप नहीं माने। अब यह नया प्रश्न उत्पन्न होता है कि उन्होंने प्रक्षेप क्यों नहीं माने? उसमें क्या रहस्य हो सकता है?

इसका उत्तर कठोर अवश्य है, किन्तु है सत्य। उन्होंने मनुस्मृति में प्रक्षेप इस कारण स्वीकार नहीं किये, क्योंकि उसके स्वीकार करने पर उनका **'विरोध के लिए विरोध'** का आन्दोलन समाप्त हो जाता। वे दलितों के सामाजिक और राजनीतिक नेता के रूप में स्वयं को स्थापित कर रहे थे। इसके लिए मनु और मनुस्मृति–विरोध का अस्त्र सफलता की गारंटी था। वे इसका किसी भी कीमत पर त्याग नहीं करना चाहते थे। मनु, मनुस्मृति, आर्य (हिन्दू) धर्म का विरोध दलितों का प्रिय विषय था। इसको सीढ़ी बनाकर वे भविष्य की ऊँचाइयों को पकड़ते गये। कुछ लोग यहाँ यह कह सकते हैं कि दलितों के हित के लिए ऐसा करना आवश्यक था। किन्तु यह कथन दूरदर्शितापूर्ण नहीं है। डॉ० अम्बेडकर का विरोध सकारात्मक कम, आक्रोशात्मक अधिक था। उनका वह कदम दलितों को दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति में ले गया जिससे भारत में एक नये वर्ग संघर्ष की परिस्थिति उत्पन्न होने की आशंका बनती जा रही है।

डॉ० अम्बेडकर अपने मन में हिन्दुओं के प्रति गहरी घृणा पाल चुके थे और हिन्दू धर्म को त्यागने का निश्चय कर चुके थे, अत: उन्होंने हिन्दू–दलित सौहार्द को बनाये रखने की चिन्ता की ही नहीं। निश्चय ही यह विचार भारतीय समाज और राष्ट्र के लिए हितकर नहीं था।

अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए डॉ० अम्बेडकर ने मनुस्मृति की यथार्थ

साहित्यिक स्थिति को, तर्क को, प्रमाण को, परम्परा को, तथ्यों को, तटस्थ समीक्षा को, सत्य के अनुसन्धान के दावे को तिलांजलि दे डाली। उन्होंने विरोध करने के अतिरिक्त, सभी आपत्तियों–आरोपों का उत्तर देने के दायित्व से किनारा कर लिया। उनके अनुयायियों ने उनका अनुकरण किया। आज भी स्थिति यह है कि उनके समर्थक और अनुयायी मनु और मनुस्मृति का विरोध तो करते हैं किन्तु किसी भी शंका का तर्क और प्रमाण से उत्तर नहीं देते। प्रक्षिप्त और मौलिक श्लोकों के अन्तर को वे समझना–मानना नहीं चाहते। वे वास्तविक स्थिति से मुँह मोड़कर आज भी **'केवल विरोध के लिए विरोध'** को अपना लक्ष्य मान बैठे हैं जबकि परिस्थितियाँ बदल जाने पर अब उन पुरानी बातों को भूलने और छोड़ने में ही समझदारी और राष्ट्रहित है।

अन्त में, फिर से प्रश्न उठाया जाता है कि ठीक है, मनुस्मृति में उत्तम विधानों के श्लोक हैं, किन्तु मनु–विरोधी लेखकों द्वारा प्रस्तुत श्लोक भी तो मनुस्मृति के ही हैं, जो सर्वथा आपत्ति योग्य हैं। इस प्रकार बड़ी उलझन भरी स्थिति ज्ञात होती है मनुस्मृति की। उसमें एक ही साथ न्यायपूर्ण श्रेष्ठ विधान भी हैं और अन्यायपूर्ण निन्द्य विधान भी। लेकिन क्या मौलिक रूप से यह स्थिति सम्भव मानी जा सकती है? जब एक प्रबुद्ध सामान्य लेखक की रचना में भी इस प्रकार के परस्पर विरोध नहीं मिलते तो एक धर्मवेत्ता, विधिवेत्ता ऋषि के धर्म और विधिशास्त्र में ऐसे विरोध कैसे हो गये? इसका सीधा–स्पष्ट और निर्विवाद उत्तर है कि वे विरोधी श्लोक प्रक्षिप्त हैं अर्थात् समय–समय पर बाद के लोगों ने रचकर मनुस्मृति में मिला दिये हैं। मौलिक श्लोक पूर्वापर प्रसंगों से, विषयों से जुड़े हुए हैं और गुण–कर्म–योग्यता के सिद्धान्त पर आधारित हैं, गम्भीर शैली में हैं, जबकि प्रक्षिप्त श्लोक प्रसंग, परस्परविरुद्ध तथा भिन्न शैली के हैं। इन साहित्यिक तटस्थ मानदण्डों के आधार पर अब हम कह सकते हैं कि इस लेख में उद्धृत श्लोक मौलिक हैं और इनकी भावना के विपरीत श्लोक प्रक्षिप्त हैं इन श्लोकों की मौलिकता और प्रक्षिप्तता को यदि पाठक, और अधिक गम्भीरता तथा विस्तार से जानना चाहें, तो वे आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, 455 खारी बावली, दिल्ली से प्रकाशित इस लेखक के भाष्य एवं समीक्षायुक्त मनुस्मृति (सम्पूर्ण) का अध्ययन करें। इसमें कृतित्व पर आधारित सर्वसामान्य सात मानदण्डों के आधार पर मौलिक और

प्रक्षिप्त श्लोकों को पृथक् दर्शा कर उन पर युक्ति-प्रमाण सहित समीक्षा दी गयी है। प्रक्षिप्तों पर यह नवीनतम शोधकार्य है।

मनुस्मृति के सन्दर्भ में वास्तविक स्थिति यह है कि मनुस्मृति-विरोधी सभी लेखकों में कुछ एकांगी और पूर्वाग्रहयुक्त बातें समानरूप से पाई जाती हैं। उन्होंने कर्मणा वर्णव्यवस्था को सिद्ध करने वाले आपत्तिरहित श्लोकों, जिनमें स्त्री-शूद्रों के लिए हितकर और सद्भावपूर्ण बातें हैं जिन्हें कि पूर्वापर प्रसंग से सम्बद्ध होने के कारण मौलिक माना जाता है, को उद्धृत ही नहीं किया। केवल आपत्तिपूर्ण श्लोकों, जो कि प्रक्षिप्त सिद्ध होते हैं, को उद्धृत करके निन्दा-आलोचना की है। उन्होंने इस शंका का समाधान नहीं किया है कि एक ही लेखक की पुस्तक में, एक ही प्रसंग में, स्पष्टतः परस्पर विरोधी कथन क्यों पाये जाते हैं? और अपने दो कथनों में से केवल आपत्तिपूर्ण कथन को ही क्यों ग्रहण किया? दूसरों की उपेक्षा क्यों की? यदि वे लेखक इस प्रश्न पर चर्चा करते तो उनकी आपत्तियों का उत्तर उन्हें स्वयं मिल जाता। न आक्रोश में आने का अवसर आता, न विरोध का, अपितु बहुत-सी भ्रान्तियों से बच जाते।

निष्कर्ष : संक्षेप में, मनुस्मृति के मौलिक और प्रक्षिप्त श्लोकों की पहचान के सरल उपाय इस प्रकार हैं—

1. मनु की समाज व्यवस्था गुण-कर्म-योग्यता पर आधारित वैदिक वर्णव्यवस्था है (डॉ० अम्बेडकर ने भी इसे स्वीकार किया है), अतः गुण-कर्म-योग्यता के सिद्धान्त पर आधारित जो श्लोक हैं, वे मौलिक हैं। उनके विरुद्ध जन्मना जातिविधायक और जन्म के आधार पर पक्षपात का विधान करने वाले श्लोक प्रक्षिप्त हैं। वे उस काल की मिलावट हैं जब समाज में जातिवाद की भावना पनपी। यह काल बौद्धकाल से कुछ शताब्दी पूर्व का था।

मनु के समय जातियाँ नहीं बनी थीं। यही कारण है कि मनु ने वर्णों में जातियों की गणना नहीं दर्शायी है। इस शैली और सिद्धान्त के आधार पर वर्ण संकरों से सम्बन्धित सभी श्लोक प्रक्षिप्त हैं और उनके आधार पर वर्णित जातियों का वर्णन भी प्रक्षिप्त है।

2. इस पुस्तक के 'मनुस्मृति की मौलिक मान्यताएँ' शीर्षक लेख में उद्धृत मनु की यथायोग्य दण्डव्यवस्था, जिसमें उच्च-उच्च वर्ण को

अधिकाधिक दण्डविधान है, मौलिक है, उसके विरुद्ध पक्षपातपूर्ण कठोर दण्डव्यवस्था विधायक श्लोक प्रक्षिप्त हैं।

3. पूर्वोक्त लेख में उद्धृत शूद्र की परिभाषा, शूद्रों के प्रति सद्भाव, शूद्रों के धर्मपालन, वर्णपरिवर्तन आदि के विधायक श्लोक मौलिक हैं; उनके विपरीत जन्मना शूद्रनिर्धारक, स्पृश्यापृश्य, ऊँच-नीच, अधिकारों के निषेध आदि के विधायक श्लोक प्रक्षिप्त हैं।

4. पूर्वोक्त लेख में उद्धृत नारियों के सम्मान, स्वतन्त्रता, समानता, शिक्षा विधायक श्लोक मौलिक हैं, इसके विपरीत प्रक्षिप्त हैं।

इन निष्कर्षों के आधार पर कहा जा सकता है कि मनु की मान्यताएँ आपत्ति रहित हैं।

अत: आवश्यकता इस बात की है कि मनु एवं मनुस्मृति को मौलिक रूप में पढ़ा और समझा जाये और प्रक्षिप्त श्लोकों के आधार पर किये जानेवाले विरोध का परित्याग किया जाये। आदिविधि दाता राजर्षि मनु एवं आदि-संविधान मनुस्मृति गर्व करने योग्य हैं, निन्दा करने योग्य नहीं। भ्रान्तिवश हमें अपनी अमूल्य एवं महत्वपूर्ण आदितम धरोहर को निहित स्वार्थमयी राजनीति में घसीटकर उसका तिरस्कार नहीं करना चाहिए।

मनुस्मृति में प्रक्षेपों के दुष्परिणाम—मनुस्मृति तथा अन्य ग्रन्थों में प्रक्षेप होने के कारण अनेक दुष्परिणाम सामने आ रहे हैं, जिनमें कुछ प्रमुख इस प्रकार हैं—1. मनु और मनुस्मृति के रचनाकाल में भ्रान्तियाँ उत्पन्न हुई हैं, 2. मनुस्मृति नव्य वर्णनों के कारण अर्वाचीन शास्त्र माना जाने लगा है, 3. मनुस्मृति की मौलिकता और प्रामाणिकता में सन्देह उत्पन्न होता है, 4. रूढ़िवादी और पक्षपातपूर्ण वर्णनों के कारण मनु के व्यक्तित्व और मनुस्मृति की प्रतिष्ठा को हानि पहुँची है, 5. वैदिक काल के इतिहास, संस्कृति-सभ्यता का विकृत चित्र पाठकों के सामने प्रस्तुत हुआ है। 6. प्राचीन भारत के आदि-संविधान, आदि-शास्त्र के गौरवपूर्ण शास्त्र का अवमूल्यन हुआ है। इत्यादि दुष्परिणामों को देखते हुए यह आवश्यक हो जाता है कि मनुस्मृति के प्रक्षेपों की पहचान करके उनको हटाया जाये। इसी पवित्र साहित्यिक लक्ष्य को ध्यान में रखकर इस लेखक ने 'मनुस्मृति' के प्रक्षेपानुसन्धान का कार्य किया है।